नाम-साधना का मनोवैज्ञानिक विवेचन

—डा० ए० डी० बतरा
(पुणे विश्वविद्यालय)

विज्ञान की प्रगति अनेक शास्त्रों को प्रभावित/प्रेरित कर रही है—इसका प्रभाव व्यापक रूप में जीवन के सभी आयामों में दिखता है, भौतिक और भावनिक (आध्यात्मिक) सभी क्षेत्रों में वैज्ञानिक जिज्ञासा अनुभव होती है। व्यक्तिगत विचार, निजी अनुभव, अपना मत आदि प्राचीन कल्पनायें निरर्थक सिद्ध हो रही हैं। व्यक्तिनिरपेक्ष विचार, शास्त्रीय स्तर, स्वयं मान्यता प्राप्त विचार अनुभव ही अब ग्राह्य माना जाता है।

मनोविज्ञान का अर्थ प्रायोगिक मनोविज्ञान समझा जा रहा है। अनुभवजन्य मनोविज्ञान इतिहास का विषय बन चुका है। धर्म और धार्मिक विधायें-अनुभव भी अब शास्त्रीय कसौटी पर परखे विना मान्य नहीं है।

धर्म और धार्मिक वृत्ति—मनःस्थिति, स्वभाव प्रायः व्यक्ति का निजी विषय है। यह जीवन का वह आयाम है जहाँ, 'अन्य' को सामान्यतः प्रवेश नहीं है—मन को समझने की साधारण अवस्था उपलब्ध नहीं है, मन का मनोवैज्ञानिक स्वरूप बहुत ही मर्यादित आयामों में समझा जा सकेगा। धर्म की विधायें, धर्म का पालन करने वाले उसके प्रति आस्था-विश्वास और प्रयोग-तुलना करने की मनःस्थिति वाले शास्त्रज्ञ-विद्वान, सन्त अच्छी तरह समझ सकेंगे। कुछ समान अनुभव, कुछ नये, कहीं न कहीं सामान्यीकरण की परस्थिति आवरण बना सकेंगे। इस दशा में प्रयत्न और प्रयोग की मानसिक कायिक तत्परता चाहिए।

भारतीय धर्म में धर्म-साधना/अध्यात्म-साधना के अनेक आयाम हैं। नाम-साधना, जपध्यान आदि संज्ञाओं द्वारा समझी जाने वाली साधना प्राचीन काल से ही धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग/क्रिया मानी जाती है। भक्ति शास्त्रों/सूत्रों में तो इसका विशेष महत्व मान्य किया गया है।

साधना पद्धति में साधक के जीवन और साधना के परिणामों की ओर प्रायः सभी का ध्यान रहता है परन्तु इसका विवेचन/उल्लेख बहुत ही कम मिलता है। जप साधना का जीवन पर क्या, किस प्रकार, कब, कैसे, क्यों परिणाम होता है ? उसकी यथार्थता सत्यासत्य की परख आदि के विषय में अनेक विवादास्पद विवेचन प्राचीन शास्त्रों में उल्लखित हैं। इन स्थितियों का विवेचन वर्णन यद्यपि आवश्यक है तथापि यह विवेचन कौन कर सकता है या कौन समझ सकता है यह भी विवाद का विषय है इस विवाद ने भ्रम-भ्रान्ति जाल अवश्य खड़ा कर दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधना के साथ आचरण का सम्बन्ध, नैतिक जीवन की मान्यतायें आदि विवाद के संकल्प जुड़े हुए हैं, यद्यपि यम-नियम-शम-दम-स्वाध्याय-संत-संग आदि विधानों का उल्लेख मिलता है परन्तु दुर्भाग्य से इन संकल्पनाओं का मन-माना और विकृत अर्थ लगा लिया गया है—कारण मानक स्तर (Standard) विवाद का विषय है। अनुकरण सम्भव है क्या ? सबके लिए नियम, कुछ के लिए नियम, इत्यादि अपवादों ने मुख्य सिद्धान्त को विकृतियों से ढँक दिया है।

अध्यातम-साधना के अनुभव, साक्षात्कार अनुभूति का उल्लेख भी स्पष्ट रूप से नहीं किया गया है। इन अनुभवों का विवेचन सम्भव है क्या ? यह अनुभव इन्द्रियजन्य है क्या ? अतीन्द्रिय अनुभव भी हो सकते हैं – इनका तुलनात्मक अध्ययन सम्भव होगा ? उसका कुछ उपयोग होगा क्या ? सत्यासत्य का निर्णय कौन कर सकता है ? ऐसे अनेक प्रश्न खड़े हैं। अनुभूति का आदान-प्रदान प्रायः असम्भव है, ऐसा सिद्धान्त अस्तित्ववादी तत्ववेत्ता कहते हैं। अनुभूति के आदान-प्रदान ने धर्म और धार्मिक क्रियाओं में अनेक भ्रम खड़े कर दिये हैं। प्रायः अनुभूति में सामान्य स्वरूप (generalization) ढूँढ़ने की मनुष्य की कमजोरी ने धर्म की बड़ी हानि की है—भ्रम जाल खड़ा कर दिया है—लोक मान्यता। एकरूपता ढूँढ़ने का, स्वयं पर विश्वास न होने का मानव का स्वभाव इसका कारण है। इसी कारण धर्म में, धार्मिक क्रियाओं में सामान्यीकरण की स्थिति आ गई या लाई गई और धर्म का विकृत स्वरूप विकसित हो गया, जो अशास्त्रीय है और इसीलिए नई पीढ़ी, जिस पर विज्ञान का प्रभाव अपरिहार्य स्वरूप में है धर्म के प्रति, धर्म-अनुभवों और धर्मगुरुओं के प्रति उदासीन है। नये अनुभव —स्वयं के अनुभव की मनःस्थिति-परिस्थिति इस सामान्यीकरण की मनोवृत्ति के कारण नष्ट हो गई है।

मानव जीवन का स्वरूप सामाजिक है। समाज में प्रगति-उन्नति, विकास-उपलब्धि आदि स्तर मानक (norms) माने जाते हैं। जीवन के हर स्तर पर तुलनात्मक वातावरण है। इस तुलनात्मक भाग-दौड़ में ही जीवन की यथार्थता मान ली गई है—समाज के विकास के लिए यह मनःस्थिति अति आवश्यक है। राष्ट्रों के लिए भी सम्भवतः यही मनःस्थिति नित नये संशोधन और मानवी भौतिक जीवन के विकास का कारण है। प्रगति की यह संकल्पना दुर्दैव से धर्म और धार्मिक जीवन—धार्मिक साधना-क्रियाओं पर भी छा गई है। धर्म एक निजी अनुभव है, तुलना के लिए उसमें बहुत कम स्थान है। जो कुछ समानता दिखती है वह बाहरी रूप में ही है। 'धार्मिक' व्यक्ति भी इस तथाकथित समानता में रस नहीं लेता परन्तु समाजधर्म स्थापना के नाम पर धर्म का अनुभव न करने वालों परन्तु अनेक परिस्थितियों और कारणों से धर्म पर छाये हुए लोगों ने समुदाय बनाकर धर्म-अनुभवों का आडम्बरपूर्ण शास्त्र खड़ा कर दिया है। इस प्रकार के 'जीवन' आयाम से 'धर्म' को लाभ कम, हानि अधिक हुई है। धर्म में व्यक्ति की स्वतन्त्रता समाज ने छीन ली है या उसने स्वयं लोभवश समन्वय (Adjustment) के झंडे के नीचे खो दी है। प्राचीन शास्त्रों में संकल्पनायें संकेतात्मक स्वरूप में हैं और उनमें व्यक्ति/साधक की स्वतन्त्रता की पूरी व्यवस्था है। उदाहरणार्थ—'मिताहार शौच स्वाध्याय' इत्यादि तत्त्व प्रत्येक साधक के लिए भिन्न-भिन्न अर्थ/अवस्था प्रस्थापित करते हैं 'आहार' का मापदण्ड समाज नहीं हो सकता, साधक स्वयं होता है!

जप साधना में भी यही अवस्था है। अपनी इच्छा आवश्यकता अनुसार जप साधना अभिप्रेत है, इष्टदेव चुनने की भी स्वतन्त्रता है, समय, संख्या, स्थान आदि बाहरी आडम्बर हैं—भावना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। साधक की अभिरुचि, शरीर की मर्यादा आदि का पूरा ध्यान रखा गया है। मार्गदर्शक तत्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़े ही स्थूल रूप में सहायता करते हैं। साधक को स्वयं उत्तरदायित्य सम्भालना पड़ता है। मंत्र, विधि, गुरु-स्थान-मात्रा-संख्या-समय-आवश्यक रूप से मदद करते ही हैं, ऐसा नहीं; संकल्पना, इच्छा-शक्ति, स्पष्ट ध्येय महत्त्वपूर्ण हैं। बाहरी अवस्था कुछ अंशों में ही सहायक है, निरुपयोगी नहीं परन्तु अपरिहार्य भी नहीं। दुर्भाग्य से आधुनिक साधक माला-स्थान-समय-गुरु-मंत्र आदि तक आकर ही रुक गया है और 'गुरु' के तथाकथित अनुभवों का आधार ले बवन्डर/आडम्बर खड़ा करने का प्रयास कुछ समय तक करता है। यह अधिक समय तक नहीं चलता, सबको प्रभावित नहीं कर सकता और समयानुसार लुप्त हो जाता है।

धर्म अध्ययन और प्रयोग का विषय है। उसके लिए दीर्घकालीन आस्थापूर्वक साधना की आवश्यकता है (यह विधान भी सापेक्ष है) धर्म में छोटे-छोटे मार्ग (Shortcut) समझौते (Adjustment) के लिए स्थान नहीं है परन्तु समाज के नाम पर सब स्तरों पर समझौते हो चुके हैं। अब तो दूसरे के लिए जप करने वाले भी हैं और 'रामनाम' के बैंक भी हैं जहाँ खाते खोले जा सकते हैं ?

उपर्युक्त दीर्घविवेचन वस्तुतः अनुभव का विषय है—भक्ति शास्त्र में नवधा भक्ति का उल्लेख मानवी स्वतन्त्रता और आमरुचि-मर्यादाओं का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। जप साधना एक सुलभ, उपयुक्त, आडम्बरहीन मार्ग है और स्वयं पर आस्था वाले साधक को इसका अनुभव हो सकता है (इस विधान के भी अनेक अर्थ लगाये जा सकते हैं—भाषा की मजबूरी) साधक का जीवन के प्रति दृष्टिकोण, समाज, इष्टदेव के प्रति भावना उसके सामाजिक जीवन को भी कुछ अंशों में प्रभावित कर सकती है—भक्ति में समन्वय, शरणागति आदि संकल्पनायें निराशावाद, भाग्यवाद आदि का भी कभी-कभी प्रादुर्भाव करा देती है।

वास्तव में साधनामार्ग में साधक की जीवन के प्रति, सृष्टिकर्त्ता की योजना के प्रति, समाज के प्रति कृतज्ञता की भावना विकसित हो जाती है। रागद्वेष, घृणा, तुलना-अस्वीकृति, आलोचना कटुता और नकारात्मक भाव प्रायः नष्ट हो जाते हैं। नारद भक्तिसूत्र के अनुसार साधक कर्म करता है फल की ओर नहीं देखता, निर्द्वन्द्व रहता है, स्वयं मुक्त होता है और समाज को भी मुक्ति दिलाता है, मस्ती में रहता है, आत्मरत रहता है (असामाजिक नहीं), तृप्त रहता है, भागदौड़ कम हो जाती है, जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है और इस मस्ती में 'अन्य' अपने आप आने लगते हैं। तुलना-खींच-तान-भेदभाव जाति, लिंग भेद का कुछ परिणाम नहीं होता। यह सच्ची मुक्ति है। जीवन की क्रियायें सामान्य ही रहती हैं। आहार, वेषभूषा, दिनचर्या आदि में कुछ विशेष फरक नहीं पड़ता न ही उनका कुछ उपयोग है---महत्व है।

www.jainelibrary.org